

महर्षि दयानन्द रचित साहित्य

सन्ध्या

यह पुस्तक ऋषि दयानन्द की सर्वप्रथम कृति है, जिसे उन्होंने श्री स्वामी विरजानन्द सरस्वती से विद्याध्ययन करने के पश्चात् सन् १८६३ में आगरा पधारने पर लिखकर प्रकाशित करवाया , उसकी कोई प्रति उपलब्ध नहीं है।

भागवत-खण्डन

यह पुस्तक भी संस्कृतभाषा में है तथा भागवतखण्डन विषय पर लिखी गई है। यह ऋषि दयानन्द की उपलब्ध कृतियों में सबसे प्रथम कृति है तथा यह दूसरी पुस्तक सन् १८६५ ई० में लिखी गई है। सन् १९६१ ई० में पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक ने हिन्दी में उसका पुनः प्रकाशन कराया है।

अद्वैतमत-खण्डन

ऋषि दयानन्द के जीवन-चरित से ज्ञात होता है कि सन् १८७० ई० में (वि० सं० १९२७) उन्होंने अद्वैतमत-खण्डन शीर्षक से कोई पुस्तक लिखी थी , किन्तु आज यह पुस्तक अनुपलब्ध है। श्री पं० लेखरामजी द्वारा संगृहीत जीवन-चरित्र (हिन्दी-संस्करण) पृष्ठ ८१६ पर इस पुस्तक के विषय में लिखा है-" यह ट्रेक्ट (पुस्तिका) स्वामीजी ने काशीनिवास कालमें शास्त्रार्थ संख्या-२ (अर्थात् काशी शास्त्रार्थ) के पश्चात् छपवाया और यत्न करके "कविवचनसुधा" नामक हिन्दी के मासिकपत्र में संस्कृतभाषा में भाषानुवाद-(हिन्दी)-सहित मुद्रित कराया। " पं० लेखरामजी ने इसके विषय में लिखा है — "यह ट्रेक्ट नवीन-वेदान्त के दुर्ग को तोड़ने के लिए सैनिक वल से अधिक बलवान् है।"२ श्री पं० देवेन्द्रनाथ संगृहीत जीवन- चरित्र (भाग २ , पृष्ठ-५१) में इसका उल्लेख इस प्रकार मिलता है-" इस बार दयानन्द ने (नवीन वेदान्त) दुर्ग पर गोला बरसाया और उसके खण्डन में " अद्वैतमत-खण्डन" नामक पुस्तक लिखकर प्रकाशित की। '३

गर्दभतापिनी उपनिषद्

(रचनाकाल आषाढ़ सं० १९३१ से पूर्व अर्थात् सन् १८७४ के लगभग)-ऋषि दयानन्द अपने भाषणों में श्रोताओं का मनोरंजन भी किया करते थे। श्रोताओं के मनोरंजन के लिए उन्होंने एक " गर्दभतापिनी उपनिषद् " बनाई थी। इसकी कोई प्रतिलिपि सुरक्षित नहीं रखी गई, अन्यथा वह बड़े मनोरंजन की वस्तु होती। "

उपर्युक्त पुस्तकें संवत् १९२० से १९३० (सन् १८६३ से १८७३ ई०) तक के समय में लिखी गई हैं। इन दिनों ऋषि दयानन्द संस्कृत में ही बातचीत किया करते और व्याख्यान देते थे। सं० १९३१

(सन् १८७४) में कलकत्ते से लौटकर उन्होंने आर्यभाषा (हिन्दी) में बोलना प्रारम्भ किया था , अतः इससे पूर्व के ग्रन्थ, पत्र और विज्ञापन सब संस्कृतभाषा में ही लिखे गये थे।

सत्यार्थ प्रकाश

(संवत् १९३१ में प्रथम संस्करण , १९३९ में द्वितीय संस्करण) - हिन्दी भाषा में लिखित सत्यार्थप्रकाश, ऋषि दयानन्द की अद्वितीय साहित्यिक उपलब्धि है। महर्षि दयानन्दकृत ग्रन्थों में सत्यार्थ प्रकाश प्रधान ग्रन्थ है। यह धार्मिक , सामाजिक, शैक्षिक, राजनीतिक और नैतिक विषयों पर महर्षि दयानन्द की शिक्षाओं का संकलन है। इसमें ब्रह्मा से लेकर जैमिनि पर्यन्त ऋषि-मुनियों के वेद-प्रतिपादित विचारों का सार है।

सत्यार्थ प्रकाश का मुख्य उद्देश्य मनुष्यों के समक्ष सत्य-असत्य का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत करना है ताकि वे स्वयं अपना हित-अहित समझ कर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। इसमें महर्षि दयानन्द ने जहाँ सनातन वैदिक धर्म के सत्य स्वरूप का प्रतिपादन किया है वहीं अपने-पराये का भेद न करते हुए विभिन्न प्रचलित मत-मतान्तरों की निष्पक्ष तार्किक समीक्षा भी की है।

वास्तव में यह वह प्रकाशस्तंभ है जो मनुष्यों को अंधकार से प्रकाश की ओर , अतार्किकता से तार्किकता की ओर, अधर्म से धर्म की ओर और अज्ञान से विज्ञान की ओर ले जाता है।

पंचमहायज्ञविधि

(संवत् १९३१-३२)-अपने प्रथम बम्बई निवास-काल में ऋषि दयानन्द ने पंचमहायज्ञविधि की रचना की थी। इसका प्रथम संस्करण १९३१ वि० (सन् १८७४ ई०) में बम्बई से तथा संशोधित संस्करण १९३४ वि० (सन् १८७७ ई०) में काशी से छपा था। पाँच महायज्ञ क्रमशः सन्ध्या , देवयज्ञ, पितृयज्ञ, बलिवैश्वदेवयज्ञ और अतिथियज्ञ आर्यों के नैतिक कर्म हैं। इनका अनुष्ठान गृहस्थों के लिए आवश्यक है। पंचमहायज्ञविधि की रचना ऋषि दयानन्द ने इन यज्ञों की विधि का प्रतिपादन करने के प्रयोजन से की थी। ऋषि दयानन्द ने इन पंचमहायज्ञों का अत्यधिक महत्त्व समझकर "सन्ध्या " और "पंचमहायज्ञविधि" ग्रन्थ को अनेक बार प्रकाशित किया। पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक ने लिखा है - "पंचमहायज्ञविधि के पाँच संस्करण और हमारी दृष्टि में आये हैं, जो स्वामीजी महाराज के नाम से उनके जीवन काल में प्रकाशित हुए थे। " सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि आदि ग्रन्थों में भी इन यज्ञों को नित्यप्रति करने की विशेष प्रेरणा है। ऋषि दयानन्द ने अपने जीवनकाल में सबसे प्रथम पुस्तक सन्ध्या की ही छपवाई थी। पंचमहायज्ञविधि के अनेक संस्करण छप चुके हैं। यह संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में है। इसके अतिरिक्त पंचमहायज्ञविधि के अंग्रेजी , मराठी, बंगाली, गुजराती आदि अनेक भाषाओं में भी अनुवाद हो चुके हैं।

वेद-भाष्य का नमूना

(कार्तिक १९३१ वि० तदनुसार १८७४ ई०) – ऋषि दयानन्द को अपने वेदभाष्य के महान कार्य में केवल जनता से ही सहायता मिलने की आशा थी। अतएव महान् कार्य उन्होंने अपने करिष्यमाण वेदभाष्य का स्वरूप जनता पर प्रकट करने के लिए ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र अथवा सूक्त का भाष्य नमूने के रूप में प्रकाशित किया। इसकी जानकारी पं० देवेन्द्रनाथ संकलित जीवन-चरित्र से मिलती है, किन्तु यह उपलब्ध नहीं है।

वेद-विरुद्धमतखण्डन

(मार्गशीर्ष, १९३१ वि० तदनुसार , सन् १८७४ ई०) – ऋषि दयानन्द ने यह पुस्तक वैष्णवों के वल्लभ-मत-खण्डन के विषय में लिखी है। इसका दूसरा नामवल्लभाचार्य-मत-खण्डन भी है। गुजरात प्रान्त में इस मत का प्रचार अधिक रहा है। ग्रन्थ को ऋषि दयानन्द ने संस्कृत-भाषा में लिखा था, इसका गुजराती अनुवाद श्यामजी कृष्णवर्मा ने किया था तथा वर्तमान में मिलनेवाला हिन्दी अनुवाद पं० भीमसेनकृत है।

वेदान्तिध्वान्त-निवारण

(मार्गशीर्ष, १९३१)–इस पुस्तक में स्वामीजी ने नवीन वेदान्तियों के सिद्धान्तों का खण्डन किया है। इसकी रचना सन् १८७४ ई० में हुई थी। यह ग्रन्थ ऋषि दयानन्द ने बम्बई-प्रवास के दौरान लिखा था तथा इसकी रचना केवल दो दिन में ही हो गई थी।

शिक्षापत्रीध्वान्त

निवारण-(पौष सं० १९३१) गुजरात प्रान्त में "स्वामी नारायणमत" का भी बहुत प्रचार था। इस ग्रन्थ में स्वामी नारायणमत के प्रवर्तक स्वामी सहजानन्दकृत "शिक्षा-पत्री" संज्ञक ग्रन्थ का खण्डन है। यह संस्कृत में प्रचलित खण्डनात्मक शैली में लिखा गया है। इसका हिन्दी-भाषानुवाद सहित प्रथम संस्करण संवत् १९७४ में छपा था।

आर्याभिविनय

(चैत्र १९३२ वि० तदनुसार सन् १८७६)–वैदिक भक्ति के यथार्थ स्वरूप के दिग्दर्शन के लिए ऋषि दयानन्द ने इस अपूर्व ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ के निर्माण का प्रयोजन ऋषि दयानन्द ने इस प्रकार लिखा है-"इस ग्रन्थ से तो केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूपज्ञान और भक्ति धर्मनिष्ठा, व्यवहार-शुद्धि इत्यादि प्रयोजन सिद्ध होंगे। जिससे नास्तिक और पाखण्ड मतादि अधर्म में मनुष्य न फँसे।"

इसकी रचना बम्बई-प्रवास के समय की थी। रचनाकाल १९३२ वि० तथा प्रथम संस्करण के मुद्रण का काल १९३३ वि० है। इसमें ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के कुल १०८ मन्त्रों की भक्तिभावापन्न

व्याख्या की गई है। प्रथम संस्करण के समाप्त हो जाने के पश्चात् द्वितीय संस्करण माघ संवत् १९४० में छपा।

संस्कारविधि

(प्रथम संस्करण १९३२, द्वितीय सं० १९४०)—प्राचीन ऋषियों ने मानव-जीवन को सुसंस्कृत बनाने के लिए बहुविध संस्कारों की योजना की थी। वर्तमान समय में अनेक संस्कारों का तो प्रचलन ही बन्द हो गया और जो संस्कार होते भी हैं उनमें बहुत-सी विकृतियों का समावेश हो गया। ऋषि दयानन्द मानवसमाज की उन्नति के लिए सोलह संस्कारों का शास्त्रीय विधि से पुनः प्रचलन करना चाहते थे। संस्कारविधि में इन्हीं सोलह संस्कारों का विधान व विवरण है , जो कि वेदशास्त्रों और धर्मशास्त्रों के आधार पर है।

प्रथम संस्करण के लगभग साढ़े सात वर्ष पश्चात् द्वितीय संशोधित संस्करण प्रकाशित करने की आवश्यकता अनुभव हुई। एक तो प्रथम संस्करण समाप्त हो गया था , दूसरा ऋषि दयानन्द उसे नवीन शैली से लिखना चाहते थे। प्रथम संस्करण में संस्कृतपाठ एक स्थान पर और भाषापाठ उससे अलग एकत्र लिखा गया था , जिसके फलस्वरूप संस्कार करानेवालों को संस्कृत के प्रमाणभाग और विधिभाग तथा उसका भाषानुवाद दूर-दूर होने से कठिनाई पड़ती थी। संशोधित द्वितीय संस्करण का मुद्रण कार्य आश्विन शुक्ल ५, बुधवार, १९४१ वि० को समाप्त हो गया था।

चतुर्वेद-विषय-सूची

(सं० १९३३)-ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य रचने से पूर्व चारों वेदों का गहन आलोडन करके उनमें प्रतिपाद्य विषयों की एक सूची तैयार की थी। यह चतुर्वेद विषय-सूची उनके करिष्यमाण चारों वेदों के भाष्यों का प्रारूप है तथा वेद-विषयों का संग्रहमात्र है। यह विशेषरूप से ऋग्वेद के शेष अंश, सामवेद और अथर्ववेद के तात्पर्य ज्ञान में पर्याप्त सहायक हो सकती है। परोपकारिणी सभा अजमेर से यह ग्रन्थ सं० २०२८ वि० में प्रथम बार प्रकाशित हुआ है।

वेदभाष्य का दूसरा नमूना

ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य के नमूने का यह अंक संवत् १९३३ में काशी के लाजरस प्रेस में छपवाया था। इसमें ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का प्रथम सूक्त और द्वितीय सूक्त के प्रथम मन्त्र के संस्कृतभाष्य का कुछ अंश छपा है। इसमें ऋषि ने प्रत्येक मन्त्र के भौतिक और पारमार्थिक दो-दो प्रकार के अर्थ दर्शाये हैं

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका

(सं० १९३३) – ऋषि दयानन्द ने प्राचीन आर्ष पद्धति से वेदभाष्य करना प्रारम्भ किया , और वेद-विषयक अपने मन्तव्यों तथा पद्धति का निरूपण करने के प्रयोजन से “ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका” की रचना की। यह ग्रन्थ संस्कृत और हिन्दी दोनों भाषाओं में है। वेदभाष्य के वास्तविक निर्माणसे पूर्व वेदों के सम्बन्ध में अपनी धारणाओं को स्पष्ट करने तथा वेदाध्ययन के समय

आनेवाली विभिन्न समस्याओं पर विचार करने के लिए ऋषि दयानन्द ने इस भूमिका के रूप में वेदविषयक स्वमन्तव्यों का विस्तृत उल्लेख किया है।

अयोध्या में भाद्र शुक्ल प्रतिपदा, सं० १९३३ वि० अर्थात् २० अगस्त, १८७६ ई० से ऋषि दयानन्द ने वेदभाष्य की रचना का कार्य नियमित रूप से प्रारम्भ किया और वेदभाष्य के प्रारम्भ से पूर्व ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका की रचना की। यह भूमिका उनके करिष्यमाण चारों वेदों के भाष्य की है। ऋषि दयानन्द ने जिन मूलभूत सिद्धान्तों को आधार बनाकर अपना वेदभाष्य लिखा, उनका प्रतिपादन उन्होंने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में कर दिया है। अतएव उनके वेदभाष्य को समझने के लिए भूमिका को पहले पढ़ना आवश्यक है।

ऋग्वेद भाष्य

ऋषि दयानन्द ने जिस वैदिक धर्म की व्याख्या सत्यार्थप्रकाश के पूर्वार्द्ध के दस समुल्लासों में की थी, उसका मुख्य आधार वेद ही है। ऋषि दयानन्द का मानना था कि “पाँच सहस्र वर्षों के पूर्व वेदमत से भिन्न दूसरा कोई भी मत नहीं था। वेदों की अप्रवृत्ति होने का कारण महाभारत-युद्ध हुआ। इनकी अप्रवृत्ति से, अविद्यान्धकार के भूगोल में विस्तृत होने से, मनुष्यों की बुद्धि भ्रमयुक्त होकर जिसके मन में जैसा आया वैसामत चलाया।”

ऋषि दयानन्द का मानना था कि वर्तमान में जितने वेदभाष्य उपलब्ध हैं, उनके रचयिता महीधर, सायण आदि के ऊपर पौराणिक युग व उसकी शिक्षा का अत्यधिक प्रभाव था। अतएव उन्होंने प्राचीन आर्षग्रन्थों के विरुद्ध अत्यन्त भ्रष्ट और बुद्धि-विरुद्ध व्याख्यान करके वेदों को कलुषित किया है। ऋषि दयानन्द ने अथक परिश्रम द्वारा समस्त प्राचीन आर्षग्रन्थों से वैदिक धर्म के गूढ़ रहस्यों और सिद्धान्तों का संग्रह किया था। वेद और आधुनिक भाष्यों का अनुशीलन करके, वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वेदों के वास्तविक शुद्ध स्वरूप को कलुषित करनेवाले ये नवीन भाष्य ही हैं। उधर यूरोपियन देशों का भारत के साथ सम्पर्क होने पर, पाश्चात्य विद्वानों का ध्यान वैदिक साहित्य की ओर गया तो वेदमन्त्रों का अर्थ करने के लिए उन्होंने सायणाचार्य के वेदभाष्य का ही आश्रय लिया। राथ, मैक्समूलर, ग्रीफिथ आदि पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किये गये वेदों के अनुवाद प्रायः सायण के वेदभाष्य पर ही आधारित हैं। उनके अनुवादों के कारण वेदों के सम्बन्ध में अनेकविध भ्रान्तियाँ व मिथ्या धारणाएँ पैदा हो गईं। उन्नीसवीं शती में ईसाई मिशनरियों ने वेदों पर आक्षेप करने प्रारम्भ कर दिये और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किये गये वेदों के अनुवाद का सहारा लेकर यह प्रदर्शित करने लगे कि हिन्दुओं के सर्वमान्य ग्रन्थ के मन्तव्य कितने उपहासास्पद हैं। सायण के भाष्य में आर्ष नैरुक्तप्रणाली का प्रयोग नहीं किया गया था और वैदिक शब्दों का अर्थ प्रायः वही कर दिया गया था, जो अर्थ लौकिक संस्कृत में प्रयुक्त होते हैं। पाश्चात्य विद्वानों ने भी सायण की पद्धति का अनुसरण किया, जिसके परिणामस्वरूप वेदों का सही स्वरूप प्रकट हो ही नहीं सका।

आर्यजाति के कल्याण व पुनरुत्थान के लिए ऋषि दयानन्द वेदों के प्राचीन शुद्धस्वरूप का प्रकट होना आवश्यक समझते थे, इसके लिए उन्होंने आर्ष-पद्धति से वेदभाष्य करने का संकल्प लिया।

“व्यवस्थित रूप से ऋग्वेदभाष्य का लेखन मार्गशीर्ष शुक्ल ६ संवत् १९३४ से आरम्भ हुआ। यह भाष्य मासिक रूप में छपता और ग्राहकों को भेजा जाता था। वेदभाष्य के नियमित ग्राहकों में अनेक स्वदेशी एवं विदेशी विद्वान् थे। प्रो० मोनियर विलियम्स तथा प्रो० मैक्समूलर-जैसे पाश्चात्य संस्कृतज्ञ वेदभाष्य के पाठक थे तो भारत में महादेव गोविन्द रानाडे , गोपालराव हरिदेशमुख, सर टी० माधवराव , केशवचन्द्र सेन, महेन्द्रलाल सरकार, राजा जयकृष्णदास, महाराजा होल्कर आदि महानुभावों को वेदभाष्य नियमित रूप से भेजा जाता था।”

ऋग्वेद में दश मण्डल, १०२८ सूक्त और १०५२२ मन्त्र हैं। इनमें से महर्षि अपने जीवन काल में सप्तम मण्डल के ६१वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र तक अर्थात् ५६४९ मन्त्रों का ही भाष्य कर पाये थे। यदि ऋषि को बीच में ही विष न दिया गया होता तो वे अपने जीवनकाल में न केवल सम्पूर्ण ऋग्वेद का अपितु सामवेद और अथर्ववेद का भाष्य भी लिख जाते। यह उनके भाद्र बदी ५ सं० १९४० (२१ अगस्त, १८८३) को, मुंशी समर्थदान को लिखे गये पत्र से स्पष्ट है- ऋग्वेद का चौथा अष्टक भी पूरा हो गया। पाँचवें अष्टक का एक अध्याय कल पूरा होगा और छठा मण्डल आज पूरा हो गया। परमेश्वर की कृपा से १ वर्ष में सब ऋग्वेद भाष्य पूरा हो जायेगा। और एक डेढ़ वर्ष साम और अथर्व में लगेगा।

यजुर्वेद-भाष्य

(पौष १९३४ माघ १९३९) —ऋग्वेद- भाष्य का आरम्भ करने के कुछ दिन पश्चात् ही ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद-भाष्य का आरम्भ कर दिया था। " इस भाष्य की रचना में चार वर्ष दस मास लगे थे। २ चार वैदिक संहिताओं में से ऋषि दयानन्द केवल यजुर्वेद का ही पूरा भाष्य कर सके थे।

अपने देहावसान तक ऋषि दयानन्द वेदभाष्य के कार्य में लगे रहे। धर्म-प्रचार , समाजसुधार तथा आर्यसमाज के संगठन के कार्यों के साथ भी वेदों का भाष्य निरन्तर करते रहे। अप्रत्याशित मृत्यु के कारण, वे इस महत्त्वपूर्ण कार्य को पूरा नहीं कर सके। पर आंशिक रूप से वेदों का जो भाष्य वे कर गये, उसके कारण वेदों का वास्तविक अभिप्राय समझ सकने का मार्ग प्रशस्त हो गया। वेदभाष्य के कार्य का ऐतिहासिक महत्त्व है। वेदों के अर्थ को जनसाधारण की भाषा में प्रगट करना एक क्रान्तिकारी व प्रगतिशील पग था। ऋषि दयानन्द पहले व्यक्ति थे , जिन्होंने संस्कृत के साथ-साथ हिन्दी में भी वेदों का भाष्य कर उनका ज्ञान सर्वसाधारण लोगों के लिए सुलभ बना दिया और साथ ही अन्य लोकभाषाओं में भी वेदों को अनूदित किये जाने का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

आर्योद्देश्यरत्नमाला

(संवत् १९३४, ३५ के शेष ग्रन्थ) —ऋषि दयानन्द ने १०० मन्तव्यों का एक संग्रह संवत् १९३४ में आर्योद्देश्यरत्नमाला के नाम से प्रकाशित किया था। इसमें आर्यसिद्धान्तों को सरल भाषा में लिखा गया है। पं० लेखरामजी के अनुसार-" यह पुस्तक इस प्रयोजन से लिखी गई थी कि जब स्वामीजी स्थान-स्थान पर पहुँचते और सत्यधर्म का उपदेश करते थे तो लोग उनसे " आर्य-

सिद्धान्त" पूछा करते थे और इसकी सरल भाषा की पुस्तक माँगा करते थे। एक सरल व स्पष्ट पुस्तक न होने के कारण प्रायः समय नष्ट करना पड़ता था। इस कारण स्वामीजी ने इस कठिनाई को दूर करने के लिए अपने अमृतसर, निवास के समय इसे प्रकाशित करवाया। यह पुस्तक सरल हिन्दी (आर्यभाषा) में लिखी गई है।

भ्रान्ति-निवारण

(कार्तिक शु० २, सं० १९३४वि०)—कलकत्ता के राजकीय संस्कृत कॉलेज के स्थानापन्न प्रिंसिपल पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न ने ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य के सम्बन्ध में अपनी आलोचनात्मक पुस्तक कलकत्ता से १८७६ ई० में छपाई थी। न्यायरत्नजी के और उनके जैसे ही अन्य आक्षेपों के उत्तर में ऋषि दयानन्द ने भ्रान्ति-निवारण ग्रन्थ लिखा। भ्रान्ति-निवारण का रचनाकाल १९३४ वि० है। इसका द्वितीय संस्करण १८८३ ई० में वैदिक यन्त्रालय प्रयाग से छपा था। ग्रन्थ का प्रथम संस्करण आर्यभूषण प्रेस शाहजहाँपुर से प्रकाशित हुआ था, जिसपर प्रकाशनकाल अंकित नहीं है। यह पुस्तक छोटी होते हुए भी वेदार्थ-जिज्ञासुओं के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

अष्टाध्यायी- भाष्य

(सं० १९३५-३६ वि०)—प्राचीन ऋषियों ने वेदार्थ को जानने के लिए ६ वेदांगों की रचना की। ये छह वेदाङ्ग शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष हैं। इनमें भी व्याकरण सबसे मुख्य है। ऋषि दयानन्द ने पाणिनिमुनिकृत संस्कृत-व्याकरण के प्रसिद्ध ग्रन्थ अष्टाध्यायी पर भी संस्कृत-हिन्दीभाष्य लिखा जो सुगम तथा सुबोध है। अष्टाध्यायीभाष्य अभी तक केवल चतुर्थ अध्यायपर्यन्त छपा है। उसमें भी प्रथम अध्याय के तृतीय चतुर्थ ये दो पाद लुप्त हैं।

जन्मचरित्र

(श्रावण सं० १९३६)—महाराष्ट्र के पुणे शहर में ऋषि दयानन्द ने १८७५ ई० (संवत् १९३२) में जो प्रवचन दिये थे, उनमें अन्तिम प्रवचन ४ अगस्त को दिया था। इसमें उन्होंने स्वजीवनवृत्त को आत्मकथा की शैली में प्रस्तुत किया था।

कुछ वर्ष पश्चात् थियासोफिकल सोसायटी के संस्थापकों में अन्यतम कर्नल एच०एस० अल्काट ने ऋषि दयानन्द से स्वजीवन वृत्तान्त लिखकर भेजने को कहा, जिसे उन्होंने अपने पत्र"थियासोफिस्ट" में प्रकाशित किया था। ऋषि दयानन्द की यह आत्मकथा मूलतः हिन्दी में ही लिखी गई थी, जिसका अंग्रेजी अनुवाद"थियोसोफिस्ट" पत्र में छपा था। यह वृत्तान्त उक्त पत्र के तीन अंकों में छपा था—

प्रथम किशत-अक्टूबर १८७९-जन्म से लेकर ऋषिकेश यात्रा (१९१२ वि० पर्यन्त)।

द्वितीय किशत-दिसम्बर १८७९-टिहरी से लेकर जोशीमठ पर्यन्त प्रवास का वृत्तान्त।

तीसरी किशत-नवम्बर, १८८०-बद्रीनाथ से लेकर नर्मदा स्रोत तक के प्रवास का विवरण।

संस्कृतवाक्यप्रबोध

(फाल्गुन, सं० १९३६)-"संस्कृत-वाक्यप्रबोध" संवाद-शैली का यह ग्रन्थ १९३६ वि० (सन् १८७९ ई०) में प्रकाशित किया गया। इसके अध्ययन से बोलचाल की संस्कृत सहज ही सीखी जा सकती है। इसमें कुल ५२ प्रकरण हैं , जिनमें साधारणतया नित्यप्रति के व्यवहार में आनेवाले प्रायः सभी प्रकार के शब्दों तथा वाक्यों का संग्रह है।

व्यवहारभानु

(फाल्गुन शुक्ल १९३६)-ऋषि दयानन्दने जहाँ विद्वानों के लिए वेदभाष्य , सत्यार्थप्रकाश आदि उच्चकोटि के ग्रन्थ रचे वहाँ जनसाधारण व बच्चों के लिए भी उपयोगी ग्रन्थों की रचना की। "व्यवहारभानु" उनकी इसी प्रकार की एक उपयोगी रचना है। इसमें दृष्टान्त आदि के द्वारा अत्यन्त सरल शब्दों में नित्य प्रति के व्यावहारिक कर्तव्यों का सुन्दर वर्णन किया गया है। यह ग्रन्थ फाल्गुन शुक्ल १५ , संवत् १९३६ (सन् १८७९ ई०) काशी में लिखा गया था। इसमें अनेक रोचक उपाख्यानों और दृष्टान्तों की सहायता से बालोपयोगी शिक्षाओं को निबद्ध किया गया है।

गोतम-अहल्या और इन्द्र-वृत्रासुर की सत्य कथा

(चैत्र वि० १९३७ से पूर्व)-इस पुस्तक में ऋषि दयानन्द ने ब्राह्मणग्रन्थों में निर्दिष्ट "गोतम-अहल्या और इन्द्र-वृत्रासुर की आलंकारिक कथा का वास्तविक स्वरूप दर्शाया था। अभी यह पुस्तक अनुपलब्ध है।"

भ्रमोच्छेदन

(आषाढ़, १९३७)-काशी के राजा शिव- प्रसाद 'सितारेहिन्द' ने ऋषि दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका पढ़ 'निवेदन' नाम से कुछ आक्षेप संवत् १९३७ वैशाख के अन्त में या ज्येष्ठ के शुरू में छपवाये थे। ऋषि दयानन्द ने राजा शिवप्रसादजी की वैदिक विषयों में अधिक गति न होने के कारण, स्पष्ट किया था कि जब तक राजा साहब अपने वक्तव्य को स्वामी विशुद्धानन्द से प्रमाणित नहीं करा देंगे , तब तक उनके कथन का कोई उत्तर नहीं दिया जाएगा। जब राजा शिवप्रसाद के 'निवेदन' पर स्वामी विशुद्धानन्द ने अपने हस्ताक्षर कर दिये तो ऋषि दयानन्द ने उनके आक्षेपों के उत्तर में ' भ्रमोच्छेदन' की रचना की। इसका रचनाकाल १९३७ वि० है। " भारतेन्दु हरिश्चन्द्र सम्पादित 'कविवचन-सुधा' ने २६ जुलाई, १८८० के अंक में तथा भारतेन्दु " ने ३० जुलाई, १८८० के अंक में भ्रमोच्छेदन की समीक्षा छापी थी। ""

अनुभ्रमोच्छेदन

भ्रमोच्छेदन के उत्तर में राजा शिवप्रसाद ने 'द्वितीय निवेदन' नामक पुस्तक प्रकाशित की। इस द्वितीय निवेदन के उत्तर में 'अनुभ्रमोच्छेदन' ग्रन्थ लिखा गया। रचनाकाल संवत् १९३७ फाल्गुन कृष्ण ४, बृहस्पतिवार है।

गोकरुणानिधि

(पौष १९३७)-ऋषि दयानन्द भारत- जैसे कृषिप्रधान देश की आर्थिक स्थिति बहुत कुछ पशुधन की वृद्धि तथा उनके संरक्षण पर मानते थे। उन्होंने अपने कार्यकाल में गौ आदि मूक प्राणियों की रक्षार्थ महान् आन्दोलन भी किया था और वायसराय तथा भारत सरकार के पास दो करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षर युक्त प्रार्थनापत्र भेजने के लिए बहुत बड़ा उद्योग भी किया था। इसके लिए अनेक सज्जनों को पत्र लिखे थे जो पत्र और विज्ञापनों में संगृहीत हैं।

गोरक्षा-विषयक अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने 'गोकरुणानिधि' पुस्तक की रचना की। इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन १९३७ वि० (१८८१ ई०) में हुआ। इसके दो भाग हैं। प्रथम में गोरक्षा के महत्त्व तथा उनके लाभों को अनेक युक्तियों तथा आँकड़ों से सिद्ध किया है। साथ ही मांसाहार के अवगुणों और निरामिष भोजन के महत्त्व का प्रतिपादन किया है। दूसरे भाग में गोरक्षार्थ स्थापित होनेवाली सभाओं के नियमोपनियमों का उल्लेख है।

वेदाङ्गप्रकाश

संस्कृत व्याकरण का सरल-सुबोध रीति से ज्ञान कराने के लिए ऋषि दयानन्द ने चौदह भागों में वेदाङ्ग प्रकाश शीर्षक से ग्रन्थमाला का प्रकाशन किया। ऋषि दयानन्द ने सर्वसाधारण को संस्कृत का ज्ञान कराने के लिए पाणिनीय व्याकरण की प्रक्रिया के ढंग पर आर्यभाषा (हिन्दी) में व्याख्या कराई और उनमें शिक्षा तथा निघण्टु का समावेश करके उनका "वेदाङ्गप्रकाश" साधारण नाम रखा। इस विषय में निम्नलिखित विज्ञापन द्रष्टव्य है- (यह ऋग्वेदभाष्य के १५वें अंक (संवत् १९३७) के टाइटल पेज पर छपा था) – "विदित हो कि स्वामी दयानन्द सरस्वती वैसे तो वेदों का अत्युत्तम प्राचीन ऋषि-मुनियों के प्रमाणसहित संस्कृत और आर्यभाषा में भाष्य कर ही रहे हैं, परन्तु अब उन्होंने आर्यसमाजों के कहने से व्याकरणादि वेदों के अंग और उपांग आदि को भी अति सुलभ आर्यभाषा में प्रकाश करने का आरम्भ किया है कि जिनसे मनुष्य शीघ्र संस्कृत विद्या को पढ़कर मनुष्यजन्म के समग्र आनन्द को भोगें। "

उस समय संस्कृत भाषा को पढ़ाने के लिए हिन्दी में रचनाकरनेवाला दूसरा कोई व्यक्ति नहीं था। ऋषि दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे , जिन्होंने आर्यभाषा में संस्कृत व्याकरण के ग्रन्थों की रचना की। वेदाङ्गप्रकाश के सभी भागों का संक्षिप्त परिचय इसप्रकार है-

१. वर्णोच्चारणशिक्षा- (माघ कृ० ४, संवत् १९३६)- इसमें ऋषि दयानन्द ने पाणिनीय शिक्षा की आर्यभाषा में व्याख्या की है।

२. सन्धिविषय - (आषाढ़ संवत् १९३७)- इसमें तीन प्रकरण हैं — संज्ञा, परिभाषा, और साधनप्रकरण।

३. नामिक — (चैत्र शुक्ल, १४, संवत् १९३८) — इसमें नाम (संज्ञा शब्दों) का व्याख्यान है , इसी से यह नामिक कहलाया।

४. कारकीय—(भाद्रपद कृष्णा ८, सं० १९३८) – इसमें कारक प्रकरण की व्याख्या है।

५. सामासिक—(भाद्रपद कृष्णा, १२ सं० १९३८) – इसमें समासों का व्याख्यान है।

६. स्त्रैणताद्धित—(मार्गशीर्ष शुक्ल ५, सं० १९३८) – इसमें स्त्रीप्रत्यय तथा तद्धितप्रत्ययों का विवेचन है।

७. अव्ययार्थ—(आश्विन शुक्ल, ६ से पूर्व, संवत् १९३८) – इसमें संस्कृतभाषा में प्रयुक्त होनेवाले अव्ययों का अर्थ तथा उनका वाक्य में किस प्रकार प्रयोग करना चाहिए, यह बताया गया है। भूमिका में अव्यय किसे कहते हैं, यह भी बताया गया है।

८. आख्यातिक—(पौष कृ० ९ से पूर्व, संवत् १९३८)– आकार की दृष्टि से वेदांगप्रकाश का यह भाग सबसे बड़ा है। आख्यात नाम क्रिया का है। क्रिया का व्याख्यान होने से इस ग्रन्थ का नाम आख्यातिक है। इसके पूर्वार्द्ध में धातु-प्रक्रिया तथा उत्तरार्द्ध में कृदन्त प्रक्रिया लिखी है।

९. सौवर—(भाद्र सुदि १३, सं० १९३९) – इसमें लोक तथा वेदादि प्राचीन ग्रन्थों में प्रयुक्त होनेवाले उदात्तादि स्वरों का उल्लेख है। उदात्तादि स्वरों का ठीक-ठीक बोध होने पर ही स्वर लगे हुए लौकिक-वैदिक शब्दों के नियत अर्थों को शीघ्र जाना जा सकता है।

१०. पारिभाषिक—(आश्विन शुक्ल, सं० १९३९)—इसमें महाभाष्य में जापित परिभाषा वचनों की व्याख्या है।

११. धातुपाठ — (पौष बदि १०, संवत् १९३९) —यह पाणिनि मुनिकृत मूल ग्रन्थ है। आख्यातिक इसी ग्रन्थ की व्याख्या है।

१२. गणपाठ—(माघ शु० १०, संवत् १९३९) – यह मूल ग्रन्थ भी पाणिनिमुनि-रचित है। अष्टाध्यायी में पठित गणों के शब्दों का संग्रह इसमें किया गया है।

१३. उणादिकोष—(माघ कृ० १, सं० १९३९) —यह पुस्तक पाणिनिमुनि द्वारा विरचित है। इसमें व्याकरण शास्त्र के महत्त्वपूर्ण अङ्ग उणादिसूत्रों की सरल व्याख्या है। यह केवल संस्कृत में लिखा गया है। भूमिका के कुछ पृष्ठ हिन्दी में हैं।

१४. निघण्टु—(मार्गशीर्ष शुक्ल १४, सं० १९३८)—मूलरूप में यह यास्कमुनि द्वारा प्रणीत है। सर्वसाधारण के लाभ के लिए निघण्टु की अनेक हस्तलिखित प्रतियों का मिलान कर स्वामीजी ने शुद्ध संस्करण को प्रकाशित करवाया था। इसी का व्याख्यान ग्रन्थ निरुक्त कहता है।

पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक के अनुसार यदि स्वामीजी कुछ दिन और जीवित रहते तो वेदाङ्गप्रकाश के अन्तर्गत वेद के अन्य अङ्गों की पुस्तकों का भी प्रकाशन करते।

ऋषि दयानन्द ने संस्कृत व्याकरण में प्रौढ़ता प्राप्त करने के लिए पाणिनीय अष्टाध्यायी तथा उसपर लिखे गये पतञ्जलिकृत भाष्य की उपयोगिता को निर्विवाद माना। इसी उद्देश्य से उन्होंने अष्टाध्यायी पर संस्कृत-हिन्दी भाष्य का उपक्रम किया था।

शास्त्रार्थ

ऋषि दयानन्द ने अपने मन्तव्यों तथा विचारों के प्रसार के लिए व्याख्यान, प्रवचन, शंका-समाधान तथा शास्त्रार्थ की प्रणालियों को अपनाया था। उन्होंने सत्य तथा असत्य का निर्णय करने के लिए एक अनुपम रीति " शास्त्रार्थ" के रूप में अपनाई। उनके शास्त्रार्थ लिखित व मौखिक दोनों रूपों में होते थे। इन्हें भी ऋषि दयानन्द की रचनाओं में सम्मिलित किया जा सकता है। यहाँ उनके प्रसिद्ध तथा पुस्तकरूप में उपलब्ध शास्त्रार्थों का ही संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

१. **काशी शास्त्रार्थ** - कार्तिक शुक्ला १२ सं० १९२६ वि० तदनुसार १६ नव० १८६९ ई० को काशी के दुर्गाकुण्ड-स्थित, आनन्दबाग में ऋषि दयानन्द का मूर्तिपूजा पर प्रसिद्ध शास्त्रार्थकाशी के गणमान्य विद्वानों से हुआ था। यह सारा शास्त्रार्थ संस्कृत- भाषा में ही हुआ था , किन्तु संस्कृत मूल और हिन्दी अनुवादसहित "काशी-शास्त्रार्थ" वैदिक यन्त्रालय काशी से १८८० ई० में प्रकाशित हुआ। अब तो इसके अनेक हिन्दी संस्करण उपलब्ध हैं।

२. **हुगली शास्त्रार्थ**-(चैत्र, सं० १९३०) संवत् १९३० के आरम्भ में ऋषि दयानन्द का शास्त्रार्थ प्रतिमापूजन-विषय पर पण्डित ताराचरण तर्करत्न के साथ हुगली में हुआ था। यह शास्त्रार्थ भी संस्कृतभाषा में हुआ, उसी समय उसका अनुवाद बंगला भाषा में मुद्रित किया गया और उसका हिन्दी रूप " प्रतिमापूजन विचार" नाम से बाद में श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा वाराणसी से प्रकाशित किया गया था। "

३. **सत्यधर्मविचार** — (मेला-चाँदापुर) (श्रावण शु० १२ , सं० १९३७) — उत्तरप्रदेश के शाहजहाँपुर जिले में चाँदापुर कस्बे के मुंशी प्यारेलाल जमींदार ने विभिन्न धर्मों के आचार्यों को एकत्र कर धर्मचर्चा करने के उद्देश्य से एक मेले का आयोजन किया था। इसमें वैदिक धर्म के प्रतिनिधि के रूप में ऋषि दयानन्द एवं मुरादाबाद के मुंशी इन्द्रमणि , मुसलमानों की ओर से मौलवी मुहम्मद कासीम तथा मौलवी अब्दुल मंसूर, ईसाइयों की ओर से पादरी नोबेल और पादरी टी० जे० स्काट (बरेली) उपस्थित थे। सत्यधर्मविचार के निम्नलिखित संस्करण उपलब्ध हैं — (क) वैदिक यन्त्रालय, काशी (ख) आर्य साहित्य मण्डल, अजमेर, (ग) गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली।

४. **जालन्धर शास्त्रार्थ**-(आश्विन, सं० १९३४) — "पुनर्जन्म और चमत्कार" विषय पर मौलवी अहमद हुसैन से ऋषि दयानन्द का यह शास्त्रार्थ हुआ था। इसमें सरदार विक्रमसिंह अहलूवालिया भी उपस्थित थे।

५. **अजमेर शास्त्रार्थ** -ऋषि दयानन्द और पादरी ग्रे के बीच १८७८ ई० में यह शास्त्रार्थ हुआ। इंजील और कुरान पर ऋषि दयानन्द ने प्रश्न किये थे। यह शास्त्रार्थ उसी समय लेखकों से लिखवाया भी गया था।

६. **सत्यासत्य विवेक**-(शास्त्रार्थ बरेली)-ऋषि दयानन्द का एक महत्त्वपूर्ण शास्त्रार्थ बरेली के पादरी टी०जे० स्काट के साथ भाद्रपद शुक्ला ७ , ८, ९, सं० १९३६ तदनुसार २५ , २६, २७ अगस्त

सन् १८७९ ई० को हुआ। यह शास्त्रार्थ लिखित हुआ था और निम्नलिखित विषयों पर हुआ था —
(क) प्रथम दिन- आवागमन विषय पर (ख) द्वितीय दिन-ईश्वर कभी देह धारण करता है या नहीं? (ग) तृतीय दिन-ईश्वर अपराध क्षमा करता है या नहीं।

७. मसूदा शास्त्रार्थ-(प्रथम) – सन् १८८० में अजमेर में जैन साधु सिद्धकरण के साथ हुआ था।

८. मसूदा शास्त्रार्थ-(द्वितीय) – यह शास्त्रार्थ श्रावण सुदी ४, सं० १९३८ को बाबू बिहारीलाल ईसाई के साथ राव बहादुरसिंहजी मसूदा का स्वामी दयानन्द सरस्वती की मध्यस्थता में सम्पन्न हुआ था।

९. उदयपुर शास्त्रार्थ -(भाद्र १९३९) – उदयपुर निवास के समय मौलवी अब्दुल रहमान सुपरिण्टेण्डेंट पुलिस तथा न्यायाधीश न्यायालय उदयपुर , मेवाड़ के साथ ऋषि दयानन्द का निम्नलिखित विषयों पर लिखित शास्त्रार्थ हुआ था-११ सितम्बर , सोमवार, १८८२ (क) इलहामी पुस्तक कौन-सी है ? (ख) पुराण मत की पुस्तक है या विद्या की ? १७ सितम्बर, रविवार, १८८२- वेद में अन्य धर्मों की पुस्तकों से क्या विशेषता है ?

ऋषि दयानन्द ने सैंकड़ों शास्त्रार्थ किये , किन्तु उनके सभी शास्त्रार्थ न तो लिपिबद्ध किये जा सके और न वे प्रकाशित ही हुए। सत्यासत्य के ज्ञान की दृष्टि से शास्त्रार्थ प्रणाली की उपयोगिता निर्विवाद है। ऋषि दयानन्द के शास्त्रार्थ , साहित्य की एक नवीन विधा के रूप में हिन्दी साहित्य की अभिवृद्धि कर रहे हैं।

प्रवचन-संग्रह

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में सहस्रों व्याख्यान एवं प्रवचन दिये , किन्तु पूना में दिये गये उनके पन्द्रह व्याख्यानों के अतिरिक्त अन्य भाषण व प्रवचन न तो लिपिबद्ध ही हो सके और न उनका कोई विस्तृत ब्यौरा ही उपलब्ध होता है।

महाराष्ट्र के प्रसिद्ध सुधारक तथा पूना के तत्कालीन न्यायाधीश श्री महादेव गोविन्द रानाडे एवं श्री महादेव मोरेश्वर कुण्टे आदि सज्जनों के आग्रहवश ऋषि दयानन्द का आषाढ़ कृष्णा १४ , मङ्गलवार तदनुसार २० जून, १८७५ को पूनानगर में आगमन हुआ। पं० देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार उनके व्याख्यानों की व्यवस्था बुधवार पेठ के भिड़े के बाड़े में तथा कैम्प में ईस्ट स्ट्रीट में की गई। कुल मिलाकर ५० व्याख्यान दिये गये , इनमें १५ पूनानगर में तथा अवशिष्ट कैम्प में हुए। मुखोपाध्यायजी के अनुसारये सब भाषण लिपिबद्ध किये गये तथा इनका प्रकाशन भी हुआ था। सम्पादन का कार्य स्वयं रानाडे ने किया। कालान्तर में १५ व्याख्यानों का हिन्दी भाषान्तर "उपदेश मञ्जरी" के नाम से प्रकाशित हुआ।

ऋषि दयानन्द के व्याख्यानों की भाषा सरल हिन्दी हुआ करती थी। इन व्याख्यानों को मराठी में लिपिबद्ध कर , उस समय के मराठी पत्रों में भी प्रकाशित किया गया था। कालान्तर में पुस्तकाकार भी छपे। "दयानन्द-प्रवचन-संग्रह " में इन प्रवचनों का प्रामाणिक हिन्दी भाषानुवाद

प्रस्तुत किया गया। ऋषि दयानन्द की व्याख्यानशैली का इससे समुचित बोध होता है। उस समय हिन्दीभाषा में उनके समान अन्य कोई वक्ता नहीं था। मैडम ब्लेवट्स्की के अनुसार- "शंकराचार्य के बाद भारत में कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं हुआ , जो उनसे तेजस्वी वक्ता हो। " हिन्दी का समुचित अभ्यास हो जाने के अनन्तर गम्भीर स्वर , आकर्षक उच्चारण में उनका भाषण श्रोताओं को मन्त्र-मुग्ध करनेवाला होता था। एक महाराष्ट्रीय श्री गोपालराव हरिदेशमुख ने लिखा है- "सन् १८७५ के जून महीने में यहाँ (पूना) के प्रतिष्ठित और सम्मानित बड़े विद्वान् गृहस्थों के निमन्त्रण पर स्वामीजी पूना आकर गये हैं। उस समय यहाँ हिन्दू क्लब में उनके १५-१६ व्याख्यान सुनने को मिले। कितने श्रोताओं की भीड़ थी और कितना अपूर्व उस वक्ता का उपदेश और व्याख्यान, उसके स्वरूप का क्या वर्णन करें।"

विज्ञापन और पत्र

ऋषि दयानन्द के साहित्य का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग वे विज्ञापन हैं , जिन्हें उन्होंने समय-समय पर प्रकाशित किया था। ये संस्कृत और हिन्दी दोनों में हैं , और उनके विचारों , मन्तव्यों और कार्यविधि पर अच्छा प्रकाश डालते हैं।

उन्होंने सैकड़ों विज्ञापन अनेक प्रकार से छपवाये थे। इनमें कुछ सूचनार्थ होते थे , कुछ सत्यासत्य के निर्णय करने के लिए चुनौती देते हुए आह्वान करते थे और कुछ अपना मन्तव्य प्रकट करने वाले होते थे तो कुछ प्रसिद्ध रीति से उत्तर देने वाले होते थे , ताकि विरोधियों द्वारा फैलाई गई भ्रान्तियों से जनता में भ्रम न फैले।

उस समय के हिन्दी-जगत् में विज्ञापनकला का इतना अधिक व इतने अधिक रूपों में प्रयोग कहीं देखने को नहीं मिलता। ऋषि दयानन्द के इन विज्ञापनों की हिन्दी साहित्य में अनुपम छुटा बिखर रही है। उनके ये विज्ञापन उनके दिव्य व्यक्तित्व की झाँकी तो प्रस्तुत करते ही हैं , समकालीन युग की विभिन्न सार्वजनिक गतिविधियों पर भी प्रकाश डालते हैं। उनके इन विज्ञापनों का संग्रह उनके पत्र-साहित्य के साथ ही संकलित है।

इसी प्रकार ऋषि दयानन्द के बहुत-से पत्र भी संकलित किये गये हैं , जिनका उपयोग न केवल ऋषि दयानन्द के व्यक्तित्व व कृतित्व को प्रकट करने के लिए है , अपितु उनकी भाषा तथा गद्यशैली पर भी उत्तम प्रकाश पड़ता है। उनके बहुसंख्यक पत्र हिन्दी (आर्यभाषा) में ही हैं।

ऋषि दयानन्द के पत्र-व्यवहार का ग्रन्थाकार में प्रथम बार व्यवस्थित प्रकाशन मुंशीराम जिज्ञासु (स्वामी श्रद्धानन्द) ने किया। उन्होंने स्वामीजी द्वारा लिखे हुए तथा स्वामीजी के नाम लिखे गये विभिन्न व्यक्तियों के पत्रों का संग्रह "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग १" शीर्षक से सम्पादित किया। यह पत्र साहित्य हिन्दी का प्रथम पत्र-साहित्य माना गया। डॉ० नगेन्द्र के अनुसार- "आलोच्य युग में पत्र-साहित्य-विषयक दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए। महात्मा मुंशीराम ने सन् १९०४ में स्वामी दयानन्द सरस्वती सम्बन्धी पत्रों का संकलन किया। यह आलोच्य युग का ही नहीं , समूचे हिन्दी-साहित्य में पहला प्रकाशित पत्र-संग्रह है। तदनन्तर पं० भगवद्दत्त ने पर्याप्त परिश्रम तथा अनुसन्धान के बाद "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार" (१९०९)

शीर्षक पत्र-संग्रह सम्पादित किया। यह संग्रह स्वामी दयानन्द सरस्वती के चिन्तन , मनन तथा उनकी पैनी दृष्टि का परिचय देने के साथ-साथ तद्युगीन सामयिक परिस्थितियों का भी प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत करता है।"

डॉ० कमल पुंजाणी द्वारा लिखित "हिन्दी का पत्र-साहित्य ' नामक शोध-ग्रन्थ में लेखक ने लिखा है- "इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १९३५ तक हिन्दी पत्र-साहित्य के भण्डार में स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्र-रत्न ही सर्वत्र अपनी प्रभा विकीर्ण कर रहे थे।"

पं० युधिष्ठिरजी मीमांसक ने पं० भगवद्धत्त द्वारा संगृहीत और सम्पादित "पत्र और विज्ञापन" का एक परिष्कृत , परिवर्धित और संशोधित संस्करण चार खण्डों में प्रकाशित किया है। यह संशोधित संस्करण २०३७-२०४० सं० की अवधि में प्रकाशित हुआ है।

इसके पश्चात् महर्षि के ४० मूलपत्रों का अन्वेषण प्रो० धर्मवीरजी संयुक्तमन्त्री परोपकारिणी सभा अजमेर ने किया था। मूलरूप से इनका प्रकाशन प्रो० धर्मवीर के सम्पादकत्व में परोपकारिणी सभा अजमेर की ओर से किया गया है।

महाशय मामराज आर्य द्वारा संकलित महर्षि दयानन्द सरस्वती के लगभग सभी मूल-पत्र पाकिस्तान बनते समय लाहौर में ही रह गये और वे वहीं नष्ट हो गये।

आर्यसमाज के नियम व उद्देश्य

ऋषि दयानन्द ने अपने कार्यक्रम को लोकप्रिय व व्यापक बनाने के लिए हिन्दी को नवजागरण का माध्यम बनाया। अपने द्वारा स्थापित आर्यसमाज की व्यवहार भाषा हिन्दी को बनाया तथा उसके नियम व उपनियम भी हिन्दी में ही बनाये।

१० अप्रैल, १८७५ में बम्बई में आर्यसमाज की विधिवत् स्थापना की गई थी और उस समय २८ नियमों को स्वीकार किया गया था , किन्तु लाहौर में आर्यसमाज की स्थापना २४ जून , १८७७ के समय नये नियम बनाये गये। ये दस नियम आज तक आर्यसमाज में सर्वमान्य हैं। बम्बई में आर्यसमाज के जो अट्ठाईस नियम निर्धारित हुए थे, उनमें अनेकविध विषयों का समावेश था। नये नियमों में उन्हीं बातों का समावेश किया गया , जिनका सम्बन्ध समाज के उद्देश्यों तथा आधारभूत मन्तव्यों के साथ था। आर्यसमाज के संगठन का क्या स्वरूप हो , उसके सभासद् कौन व्यक्ति बन सकें और प्रचार कार्यों के लिए किन साधनों को अपनाया जाय — इस प्रकार की बातों के लिए पृथक् रूप से उपनियम बनाये गये। आर्यसमाज के नियम व उद्देश्य जो ऋषि दयानन्द द्वारा लाहौर में ज्येष्ठ शुक्ल १३ , संवत् १९३४ वि० तदनुसार २४ जून सन् १८७७ को बनाये गये – वे निम्न हैं।

१. सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं , उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२. ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप , निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३. वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परमधर्म है।

४. सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५. सब काम धर्मानुसार, अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिए।

६. संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है , अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७. सबसे प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८. अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९. प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए , किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०. सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

इनके अतिरिक्त ४० उपनियम बनाये गये जिनमें ३५वाँ उपनियम है – “ सब आर्य और आर्यसभासदों को संस्कृत व आर्यभाषा (हिन्दी) जाननी चाहिए।”

स्वीकार-पत्र

(परोपकारिणी सभा , २७ फरवरी १८८३ ई०) महर्षि दयानन्द अपने समय के महान् लेखक थे। एतदर्थ मुद्रित , प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रन्थों के रूप में उनकी निजी सम्पत्ति थी। अपने ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए वे अपना प्रिंटिंग प्रेस भी स्थापित कर चुके थे, जिससे पुस्तक-प्रकाशन का कार्य भी होता था। इनके अतिरिक्त उनकी अन्य भौतिक सम्पत्ति , हस्तलिखित व मुद्रित पुस्तकों तथा वस्त्रों इत्यादि के रूप में भी थी। यद्यपि उनके कार्यों को जारी रखने के लिए आर्यसमाजों की स्थापना हो रही थी , किन्तु कोई एक आर्यसमाज इस सब सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नहीं हो सकता था , क्योंकि तब तक किसी केन्द्रीय या सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का संगठन नहीं हुआ था। इस दशा में ऋषि दयानन्द ने अपनी सम्पत्ति के उत्तराधिकार के सम्बन्ध में एक स्वीकारपत्र लिखकर उसकी रजिस्ट्री भी करवा दी थी। परोपकारिणी सभा नाम से एक सभा को संगठित कर उसे ऋषि दयानन्द ने अपनी भौतिक सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नियत किया और सब सम्पत्ति उसके नाम वसीयत कर दी। यह वसीयत- नामा २७ फरवरी १८८३ को उदयपुर में रजिस्टर्ड कराया गया था।

परोपकारिणी सभा की विशेषता यह थी कि इसके सदस्य मुख्यतः राजस्थान के राजा तथा देश के विभिन्न प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। परोपकारिणी सभा का प्रधान उदयपुर के महाराणा श्री सज्जनसिंह को बनाया गया। शाहपुरा के राजा श्री नाहरसिंह , मसूदा के रावत श्री बहादुरसिंह , भीलवाड़ा के राणा श्री फतेहसिंह तथा असींद के रावत श्री अर्जुनसिंह को सदस्य बनाया गया। ये चारों भी महाराणा सज्जनसिंह के समान वंशक्रमानुगत राजा थे। सभा के अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों में ला० मूलराज एम०ए० (लाहौर) , ला० रामशरणदास (मेरठ) , पण्ड्या मोहनलाल विष्णुलाल (मथुरा), रायबहादुर पं० सुन्दरलाल (आगरा) , राजा जयकृष्णदास (मुरादाबाद) , ला० साईदास (लाहौर), रायबहादुर गोपालराव हरिदेशमुख (पूना), महादेव गोविन्द रानाडे (पूना), और पं० श्यामजी कृष्णवर्मा (लन्दन) के नाम उल्लेखनीय हैं। इस परोपकारिणी सभा का निर्माण उन्होंने एक वसीयतनामे के रूप में किया- "मैं स्वामी दयानन्द सरस्वती निम्नलिखित नियमों के अनुसार तेईस (२३) सज्जन आर्य-पुरुषों की सभा को वस्त्र, पुस्तक, धन और यन्त्रालय आदि अपने सर्वस्व का अधिकार देता हूँ और उसको परोपकार , सुकार्य में लगाने के लिए अध्यक्ष बनाकर यह स्वीकारपत्र लिखे देता हूँ कि समय पर काम आवे।"

ऋषि दयानन्द के स्वीकारपत्र से स्पष्ट है कि वे केवल अपनी सम्पत्ति ही सुरक्षित नहीं करवाना चाहते थे, अपितु देश के राजाओं तथा शिक्षित बुद्धिजीवियों को एक साथ मिला-बैठाकर उन्हें देश और समाज के उत्थान में लगाना चाहते थे, अतः यह स्वीकारपत्रमात्र सम्पत्ति का उत्तराधिकार-पत्र नहीं है , वरन् उनके जीवन की तरह महान् उद्देश्यों को लिये हुए है। इस वसीयतनामे का प्रारूप, नियम तथा उद्देश्य ऋषि दयानन्द के साहित्य के विधागत अध्ययन में दिये गये हैं।

आर्षग्रन्थों के अध्ययन एवं शोध के लिए पुस्तकें

ऋषि दयानन्द ने अनेक ऐसी पुस्तकों की भी रचना की थी , जिनसे आर्षग्रन्थों के अध्ययन और उनमें शोध करने में बहुत सहायता मिल सकती है। प्राचीन ग्रन्थों में शोध की वैज्ञानिक विधि में विषय-सूचियों के निर्माण का बहुत महत्त्व है। ऋषि दयानन्द ने आर्षग्रन्थों के विषय आदि की जो सूचियाँ बनाई या बनवाई थी , उनका प्रयोजन भी इन ग्रन्थों का सम्यक् प्रकार से अध्ययन , अनुशीलन तथा अवगाहन करना था। शोध की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी सूचीग्रन्थ इस प्रकार हैं- (जिनमें से अधिकतर अप्रकाशित हैं) ' (१) चतुर्वेद-विषयसूची (इसका प्रकाशन परोपकारिणी सभा द्वारा हो गया है) (२) ऋग्वेदमन्त्रसूची (३) यजुर् अथर्व मन्त्रसूची (४) अथर्व मन्त्रसूची (५) वेद-ब्राह्मणसूची (६) निरुक्त की विषयसूची (७) ऐतरेय ब्राह्मणसूची (८) शतपथ- ब्राह्मण विषयसूची (९) तैत्तिरीयोपनिषद् मिश्रितसूची (१०) ऋग्वेद- विषय-स्मरणार्थसूची (११) शतपथब्राह्मणसूची (१२) धातुपाठसूची (१३) कारिकासंकेतसूची (१४) निघण्टुसूची (१५) ऐतरेय उपनिषद्सूची (१६) छान्दोग्योपनिषद्सूची (१७) ऋग्वेद- सूक्तसूची (१८) शतपथ शिलाष्ट- प्रतीकसूची।

अन्य मत-मतान्तरों के अध्ययन एवं शोध के लिए उपयोगी पुस्तकें

सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए , यह ऋषि दयानन्द का सिद्धान्त है और यही आर्यसमाज के चौथे नियम में भी लिखा है। इसके लिए आवश्यक था कि अन्य सम्प्रदायों व मत-मतान्तरों के ग्रन्थों का भी समुचित रूप से अध्ययन किया जाए और उनके मन्तव्यों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक पद्धति से शोध किया जाए। " कुरान का हिन्दी अनुवाद सबसे पहले ऋषि दयानन्द ने ही कराया था , और वह अनुवाद सही है इस बात को उन्होंने विद्वान् मौलवियों द्वारा प्रमाणित भी करा लिया था। १२ अन्य मत-मतान्तरों के अध्ययन व शोध के प्रयोजन से उन्होंने निम्नलिखित पुस्तकों की रचना की-३ (१) कुरानसूची (२) बाइबिल सूची (३) कुरान (अनुवाद) (४) जैनधर्मग्रन्थसूची (५) जैनश्लोकसंग्रह (६) रामसनेही मत का गुटका, ये पुस्तकें अभी अप्रकाशित हैं।